

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 32 — पुनर्मिलन

5 October 2026



उनकी विरह-व्याकुल पुकार के अन्धकार से वे पुनः सामने आ खड़े होते हैं — मन्द मुस्कान, वनमाला, पीताम्बर — और व्रज का रुदन एक ही क्षण में विस्मय में बदल जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस बत्तीसवें अध्याय में शुकदेवजी राजा परीक्षित को सुनाते हैं कि कैसे श्रीकृष्ण रोती हुई व्रज-गोपियों के बीच लौट आए, उन्हें कालिंदी के चाँदनी-भरे पुलिन पर ले गए, और वहाँ उन्होंने प्रेम के लौटाए जाने के तीन प्रकार खोलकर बताए — तथा वह गूढ़ कारण भी, जिससे वे कुछ समय अदृश्य रहे थे।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 32 (द्वात्रिंश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: पुनर्मिलन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); अध्याय के भीतर स्वयं श्रीकृष्ण
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; अध्याय के भीतर व्रज की गोपियाँ
- मुख्य स्थल: वृन्दावन में कालिंदी (यमुना) का चौदनी से नहाया बालुका-तट
- केंद्रीय विषय: विरह में डूबी गोपियों के समक्ष श्रीकृष्ण का प्रकट होना, उनका पुनर्जीवित आनन्द, प्रेम के विषय में उनका प्रश्न, और प्रेम के तीन प्रकारों तथा अपने अदृश्य हो जाने के कारण पर प्रभु की शिक्षा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 1-22
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पिछले अध्याय में वन-वन अपने प्राणधन को खोजती व्रज-गोपियों ने मिलकर वह गान उठाया था जो तब से गोपी-गीत के नाम से स्मरण किया जाता है, जिसमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि प्रभु अपने चरण उनके हृदय पर रखें और अपने वचनों के अमृत से उन्हें जिला दें।

प्रभु उनके मध्य प्रकट होते हैं

ऐसे ही वे गाती रहीं, शुकदेवजी ने राजा से कहा, और ऐसे ही रोती रहीं — सौ प्रकार से पुकारती, कण्ठ भर आते, और सारा अस्तित्व एक ही भूख पर टिका हुआ: श्रीकृष्ण के पुनः दर्शन। और उसी विरह के ठीक मध्य में वे आ गए। एक ही क्षण में वे वहाँ खड़े थे — मुखकमल पर शान्त स्मित, वक्ष पर वनमाला, पीत रेशम धारण किए — वे, जिनके सौन्दर्य के सामने सारे जगत् को मोह लेने वाला कामदेव भी स्वयं मोहित हो जाता है।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

tāsām āvirabhūc chauriḥ smayamāna-mukhāmbujaḥ pītāmbara-dharaḥ sragvī sākṣān manmatha-manmathaḥ

अर्थ: उन्हीं के मध्य शूरवंशी श्रीकृष्ण प्रकट हो गए — मुखकमल पर मुस्कान लिए, पीत वस्त्र पहने और माला से सुशोभित, साक्षात् कामदेव के भी मन को मोहने वाले। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 2)

अपने प्राणप्रिय को लौटा देखकर वे सब गोपियाँ एक साथ उठ खड़ी हुईं, आनन्द से उनके नेत्र खिल गए — ठीक जैसे प्राणवायु के लौट आने पर शरीर के अंग पुनः स्पन्दित हो उठते हैं (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 3)।



अपने प्राणप्रिय को लौटा देखकर गोपियाँ एक साथ उठ खड़ी होती हैं, आनन्द से नेत्र खिल जाते हैं — जैसे प्राण लौटने पर अंग पुनः स्पन्दित हो उठते हैं (श्लोक 3)।

फिर प्रत्येक हृदय ने अपने ही ढंग से उन्हें उत्तर दिया। एक ने हर्ष से उनका करकमल अपनी जुड़ी हथेलियों में थाम लिया। दूसरी ने चन्दन-सुगन्धित उनकी बाँह अपने कन्धे पर ले ली। एक सुकुमार गोपी ने उनका चर्वित ताम्बूल अपनी अंजुली में ले लिया; एक अन्य ने, विरहाग्नि में जलती हुई, उनके चरणकमल अपने हृदय से लगा लिए। एक ने भौंहें चढ़ाकर और अधर दबाकर, उस रोष से विह्वल जो केवल गहरा प्रेम ही जानता है, तिरछी चितवनों की बाण-वर्षा से उन्हें मानो व्यथित किया। एक अपलक दृष्टि से उनके मुखकमल को पीती रही और फिर भी तृप्त न हुई, जैसे सन्त उनके चरणों के चिन्तन से कभी तृप्त नहीं होते। और एक ने उन्हें अपने नेत्रों के मार्ग से भीतर खींच लिया, हृदय में बैठा लिया, कहीं वे निकल न जाएँ इसलिए आँखें मूँद लीं, और रोम-रोम खड़े किए मन ही मन उनका आलिंगन करती हुई, प्रभु में लीन योगी के समान आनन्द में डूबी रह गई (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 4-8)।

उन दर्शनों के एक ही उत्सव से विरह की सारी व्यथा उन सबसे झड़ गई, जैसे किसी तत्त्वज्ञ महापुरुष से मिलने पर हृदय का शोक छूट जाता है। शोक-मुक्त उन गोपियों से घिरे अच्युत प्रभु और भी अधिक शोभा पाने लगे, जैसे अपनी ही दिव्य शक्तियों से घिरे परम पुरुष (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 9-10)।

कालिंदी के चाँदनी-भरे तट पर

उन सबको साथ लेकर सर्वशक्तिमान् प्रभु कालिंदी के मनोहर पुलिन पर उतर आए। वहाँ की वायु पूर्ण खिले मालती और मन्दार के पुष्पों की सुगन्ध लिए बहती थी और भौरों के झुंड अपने पीछे खींच लाती थी; शरद्-चन्द्रमा की किरणों की बाढ़ ने उस रात्रि का अन्धकार हर लिया था; और नदी ने तरंगों के हाथों से तट पर अत्यन्त कोमल बालू बिछा दी थी (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 11-12)।



प्रभु उन्हें कालिंदी के तट पर ले जाते हैं, जहाँ शरद्-चन्द्रमा ने अन्धकार हर लिया है और नदी की तरंगों ने अत्यन्त कोमल बालू बिछा दी है (श्लोक 11-12)।

उत्तरीयों से बना आसन

उनके दर्शन के आनन्द में गोपियों के हृदय की पीड़ा घुल गई और वे सारी कामनाओं के उस पार पहुँच गई, जैसे वेद-वचन सकाम प्रयोजनों से आगे बढ़कर भगवत्-ज्ञान में अपने यथार्थ अभिप्राय तक पहुँचते हैं। तब अपने आत्मबन्धु के लिए उन्होंने बालू पर अपने उत्तरीय वस्त्रों का आसन बिछा दिया।

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-
रचीकृतपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥

*tad-darśanāhlāda-vidhūta-hṛd-rujo manorathāntaṁ śrutayo yathā yayuḥ svair uttarīyaiḥ kuca-
kuṅkumāṅkitair acikṛtaṁ paṇṇa āsanam ātma-bandhave*

अर्थ: उनके दर्शन के आनन्द से हृदय की व्यथा धुल जाने पर वे अपनी अभिलाषा की पूर्णता तक पहुँच गई, जैसे श्रुतियाँ अपने अन्तिम प्रयोजन तक पहुँचती हैं; और कुंकुम से चिह्नित अपने ही उत्तरीय वस्त्रों से उन्होंने अपने आत्मा के सच्चे बन्धु के लिए आसन तैयार किया। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 13)



गोपियाँ अपने ही उत्तरीय वस्त्रों से बालू पर अपने आत्मबन्धु के लिए आसन सजाती हैं, और वे उनके बीच सम्मानित होकर विराजते हैं (श्लोक 13-14)।

वहाँ विराजकर और उनसे सम्मानित होकर वे सर्वशक्तिमान् प्रभु — जिनके लिए योगिराज अपने ही हृदय में आसन सजाते हैं — उस गोप-सुन्दरियों की सभा में उस रूप के साथ शोभायमान हुए जिसमें तीनों लोकों की सारी सुन्दरता का एक ही आश्रय है (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 14)। गोपियों ने भौंहों के संकेत और स्मित-भरी क्रीड़ामयी चितवनों से उनका स्वागत किया, प्रेमपूर्वक उनकी प्रशंसा की, और अपनी गोद में रखे उनके हाथ-पैर कोमलता से दबाए; और तब, मन में कुछ रोष लिए, वे बोलने लगीं (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 15)।

गोपियों का प्रश्न

उनके भीतर से जो निकला वह उपालम्भ नहीं, एक प्रश्न था। उन्होंने कहा कि इस संसार में तीन प्रकार के लोग दिखाई देते हैं, और प्रार्थना की कि प्रभु उन्हें स्पष्ट करें कि इनमें सच्चा प्रेम किसका है।

श्रीगोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।

नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥

*śrī-gopya ūcuḥ bhajato 'nubhajanty eka eka etad-viparyayam nobhayāṁś ca bhajanty eka etan
no brūhi sādhu bhoḥ*

अर्थ: गोपियों ने कहा: कुछ लोग उन्हीं को प्रेम लौटाते हैं जो उनसे प्रेम करते हैं; कुछ इसके ठीक विपरीत करते हैं; और कुछ न इनसे प्रेम करते हैं, न उनसे। हे प्रभो, कृपया यह बात हमें भली-भाँति समझाइए। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 16)



वे कहती हैं कि संसार में तीन प्रकार के लोग दिखते हैं, और प्रार्थना करती हैं कि प्रभु स्पष्ट करें इनमें सच्चा प्रेम किसका है (श्लोक 16)।

प्रेम के तीन प्रकार

प्रभु ने उनके तीनों पक्ष एक-एक कर लिए। जो केवल वहीं स्नेह देते हैं जहाँ स्नेह लौटकर मिलता है, उन्होंने कहा, हे सखियों, वे वस्तुतः अपने ही लिए परिश्रम करते हैं; ऐसे व्यवहार में न सच्ची सद्भावना है और न धर्म, क्योंकि उसका हेतु स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 17)।

किन्तु जो उन पर भी प्रेम बरसाते हैं जो बदले में प्रेम नहीं करते, वे स्वभाव से ही करुणामय हैं, जैसे माता-पिता अपनी सन्तान पर करुणामय होते हैं; उनमें सच्ची मैत्री है और वह धर्म है जिस पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 18)। और जो दोनों में से किसी से प्रेम नहीं करते, वे चार प्रकार के हैं: आत्मा में ही रमण करने वाले ज्ञानी, जिनकी प्रत्येक कामना पहले ही पूर्ण हो चुकी है वे कृतकृत्य, वे मूढ़ जो किए गए उपकार को पहचान नहीं पाते, और वे कृतघ्न जो पिता के समान अपने ही उपकारियों से बैर रखते हैं (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 19)।

प्रभु ने स्वयं को क्यों छिपाया

दूसरों के विषय में उनका प्रश्न सुलझाकर अन्त में वे अपनी ओर मुड़े — और उस एक बात की ओर, जिसे सुनने के लिए उनके हृदय प्रतीक्षा कर रहे थे।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥

*nāhaṁ tu sakhyo bhajato 'pi jantūn bhajāmy amiṣām anuvṛtti-vṛttaye yathādhano labdha-dhane
vinaṣṭe tac-cintayānyan nibhṛto na veda*

अर्थ: किन्तु हे सखियों, जो प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं, उनका भी प्रेम मैं प्रत्यक्ष रूप से नहीं लौटाता — और यह इसलिए करता हूँ कि उनकी भक्ति अखण्ड होकर बढ़े, जैसे कोई निर्धन पाया हुआ धन खो देने पर उसी के चिन्तन में ऐसा डूब जाता है कि उसे और किसी बात का भान नहीं रहता। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 20)



प्रभु अपना उत्तर खोलते हैं और फिर अपना रहस्य भी: वे ओट में रहते हैं जिससे उनका स्मरण अखण्ड हो जाए (श्लोक 20-21)।

और यही, उन्होंने गोपियों से कहा, उनके अन्तर्धान होने का सारा रहस्य था। उनके लिए इन्होंने लोक-मर्यादा, वेद-विधान और अपने स्वजनों तक को छोड़ दिया था; ऐसे प्रेम को वे अधजगा नहीं छोड़ सकते थे। इसलिए वे दृष्टि से ओट हो गए — प्रेम से कभी ओट नहीं हुए, क्योंकि अदृश्य रहकर वे सारे समय उन्हें प्रेम करते ही रहे — केवल इसलिए कि उनका चित्त अखण्ड रूप से उन्हीं में लग जाए।

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-

स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।

मयापरोक्षं भजता तिरोहितं

मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

*evam mad-arthojjhita-loka-veda svānām hi vo mayy anuvṛttaye 'balāḥ mayāparokṣaṁ bhajatā
tirohitaṁ māsūyitum mārhatā tat priyaṁ priyāḥ*

अर्थ: हे कोमलांगियों, तुम्हारी मुझमें निरन्तर अनुरक्ति बढ़े, इसी के लिए मैंने — जो अदृश्य रहकर सारे समय तुम्हें प्रेम करता रहा — अपने को तुमसे छिपा लिया; तुमसे, जिन्होंने मेरे लिए लोक, वेद और अपने स्वजनों को भी त्याग दिया। इसलिए हे प्रियाओ, तुम मुझ अपने प्रियतम में दोष न देखो। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 21)

यहाँ यह अध्याय अपना सबसे गहरा द्वार खोलता है। जो अनुपस्थिति उन्हें उपेक्षा जैसी लगी, वह वस्तुतः प्रभु का सर्वाधिक प्रगाढ़ प्रत्युत्तर थी। सदा पास रहने वाले प्रियतम को अन्य कामों के अन्तराल में भोगा जा सकता है; किन्तु जो प्रभु ओट हो जाते हैं, वे हृदय का एकमात्र अखण्ड चिन्तन बन जाते हैं — और वही अविच्छिन्न स्मरण समस्त भक्ति का लक्ष्य है। वे उस दशा की उपमा उस निर्धन से देते हैं जो धन पाकर खो देने पर और किसी वस्तु में मन नहीं लगा पाता (श्लोक 20)। अतः उनके हाथों में विरह कृपा का रुकना नहीं, कृपा का प्रचण्डतम ताप है; खोज के प्रत्येक क्षण में वे अदृश्य रहकर प्रेम करते ही रहे (श्लोक 21)।

वह ऋण जिसे वे न चुका सकें

तब उन्होंने वह बात कही जिसकी कल्पना कोई न कर सकता था। इन गोपियों ने उनके लिए गृहस्थी की वह शृंखला काट दी थी जिसे प्रायः कोई नहीं तोड़ पाता, और तनिक भी कलंक के बिना अपना चित्त उन्हीं में लगा दिया था। ऐसे प्रेम के समक्ष, उन्होंने कहा, देवताओं की दीर्घ आयु पाकर भी वे अपना ऋण नहीं उतार सकेंगे।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः

संवृश्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

na pāraye 'ham niravadya-saṁyujāṁ sva-sādhukṛtyaṁ vibudhāyusāpi vaḥ yā mābhajan durjara-geha-śṛṅkhalāḥ saṁvṛśya tad vaḥ pratiyātu sādhunā

अर्थ: तुम्हारा मेरे साथ सम्बन्ध सर्वथा निर्दोष है, और तुमने दुस्त्यज गृह-शृंखलाओं को काटकर मेरी आराधना की है; देवताओं की आयु पाकर भी मैं तुम्हारे इस साधु-कर्म का प्रत्युपकार नहीं कर सकता। इसलिए तुम्हारी अपनी साधुता ही तुम्हारा प्रतिदान हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 22)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. जो उन्हें पुकारते हैं, उन्हें वे वस्तुतः कभी नहीं छोड़ते। प्रभु उसी विरह के बीच प्रकट हो जाते हैं जो उन्हीं के लिए रो रहा था (श्लोक 2)। जहाँ पुकार निर्मल है, वहाँ उनका प्रकट होना दूर नहीं रहता।
2. केवल लेन-देन वाला प्रेम छिपा हुआ स्वार्थ है। पारस्परिक लाभ के लिए दिया गया स्नेह अपनी ही सेवा है, और प्रभु उसे मैत्री तथा धर्म का नाम नहीं देते (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 17) — यह हमारे अपने सम्बन्धों को नापने की कड़ी कसौटी है।
3. निःस्वार्थ दिया गया प्रेम माता-पिता और सन्तों का प्रेम है। जो उनका ध्यान रखते हैं जो बदले में कुछ नहीं दे सकते, वे स्वभाव से करुणामय हैं, और उनमें धर्म निष्कलंक खड़ा रहता है (स्कन्ध 10, अध्याय 32, श्लोक 18)।
4. उनका छिपना ही उनकी कृपा है। वे ओट में रहते हैं जिससे उनका स्मरण निरन्तर और अविचल हो जाए (श्लोक 20–21)। भक्त जिसे विरह की अन्धियारी रात्रि की तरह भोगता है, वह उनकी ओर से प्रेम का प्रगाढ़ होना है।

5. प्रभु स्वयं को अपने भक्तों का ऋणी बना लेते हैं। जिन पर किसी का कुछ भी ऋण नहीं, वे कहते हैं कि देवायु पाकर भी वे गोपियों का ऋण नहीं चुका सकते (श्लोक 22)। शुद्ध भक्ति उन्हें बाँध लेती है जो किसी बन्धन में नहीं आते।

एक भक्तिमय चिन्तन

जिस घड़ी को यह अध्याय थामता है, उससे हर भक्त कभी गुजरता है। गोपियों को वह सब मिल गया जो उन्होंने माँगा था — वे सामने हैं, मुस्कराते हुए, उन्हीं के हाथों सजाए आसन पर विराजे, अपने चरण उन्हें थामने दे रहे हैं — और फिर भी उनके भीतर कुछ है जो पूछे बिना नहीं रह सकता कि वे गए क्यों थे। वह पूछना दुर्बलता नहीं, सच्चाई है, और प्रभु उसका मान अपने सबसे लम्बे उत्तर से करते हैं। वे उनकी पीड़ा को न काल्पनिक कहते हैं, न तुच्छ। वे कहते हैं कि वे सारे समय वहीं थे, अदृश्य रहकर प्रेम करते हुए, और जो रिक्तता उन्होंने अनुभव की, वह उनके प्रेम का वही रूप था जिससे वह प्रेम जीवन की हर अन्य वस्तु से बड़ा हो जाए। सम्भवतः सबसे कठिन श्रद्धा उनकी उपस्थिति में नहीं, उनके मौन में माँगी जाती है — कमरा अन्धकारमय लगने पर भी दीपक जलाए रखना, इस विश्वास के साथ कि आँखों से ओट हो जाने पर भी वे एक क्षण हमसे दूर नहीं हुए। जो वह दीपक जलाए रखते हैं, वे गोपियों की तरह पाते हैं कि वे लौटकर ऐसे ऋण की बात करते हैं जिसे वे चुका नहीं सकते।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज उस एक अनुभव को लें जिसे प्रभु की उदासीनता समझने का मन सबसे अधिक होता है — कोई अनसुनी प्रार्थना, कोई विलम्ब, भक्ति में कोई सूखा-सा काल — और उसे सचेत रूप से उन्हीं की वह व्यवस्था मानकर उन्हें लौटा दें, जो आपके स्मरण को अपने निकट खींचने के लिए की गई है। कुछ क्षण शान्त बैठकर उस चित्र को हृदय में थामें जिसमें वे रोती गोपियों के बीच अकस्मात् आ खड़े होते हैं। फिर अपने मन को, खोए धन पर टिके उस निर्धन के मन की तरह, केवल भगवन्नाम पर टिका रहने दें और धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय वह घड़ी है जिसमें विरह को उत्तर मिलता है। श्रीकृष्ण ब्रज-गोपियों के बीच लौटकर अपने दर्शन मात्र से उन्हें जिला देते हैं, और कालिंदी की चाँदनी-भरी बालू पर वे सिखाते हैं कि प्रेम कैसे दिया और लौटाया जाता है — और अन्त में यह खोल देते हैं कि उनका अन्तर्धान होना त्याग नहीं था, अपितु उस भक्ति को गहरा करना था जिसे वे अदृश्य रहकर सींच रहे थे। हम भी उनके चरण ऐसी दृढ़ता से थामें कि उनके मौन भी हमें मधुर लगने लगे।

श्रीमद्भगवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भगवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), द्वात्रिंश अध्याय।

- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-32-the-reunion-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

